Rural South Asian Studies Journal: RSASJ: Vol-1, No.2 (July-Dec) 2025 ISSN: 3107-7692 (Print)

भारतीय संस्कृती में साधु एवं संन्यासी : श्री संत एकनाथ महाराज के विचार

कृष्णा बबनराव काळे
अनुसंधाता, इतिहास एवं प्राचीन भारतीय संस्कृती विभाग,
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय
छत्रपति संभाजीनगर

सारांश : भारत मे साधु संत एवं संन्यासियों और शूरवीरो की एक विरासत की बडी भूमी है। भारतीय संस्कृती में अनेकानेक आध्यात्मिक तत्वों की वृद्धि करने में कई साधु संन्यासीने अपना जीवन समर्पित किया हैं। प्राचीन भारत से लेकर आज तक साधु और संन्यासियों का योगदान रहा है। इस कारणवश भारतीय संस्कृति की संत परंपरा में कुछ विशिष्ट संतो को समझना जरुरी है। जिसमे संत एकनाथ महाराज एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं। भारतीय संस्कृती में संत एकनाथ महाराज का कार्य, स्वरूप, आचरण, इतिहास, परंपरा, उनका स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है। साधु किसे कहते हैं ? संन्यासी किसे कहते हैं? संत की परिभाषा क्या है ? शास्त्रों के अनुसार इन अभी प्रश्नों के उत्तर क्या हैं? इन तथ्यों पर विमर्श शोध निबंध में किया गया है। और इन सभी के बारे में संत एकनाथ महाराज भागवत पुराण का अनुसंधान लेते हुए क्या व्याख्या करते हैं? तथा उन सभी तथ्यों पर अपनी क्या प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, इन सब तथ्यों का वर्णन इस शोध निबंध में वर्णिंत किया गया है।

संकेत-शब्द : *संन्यासी, साधु , भारतीय संस्कृती, एकनाथी भागवत ग्रंथ.*

प्रस्तावना : भारत देश को सदियों से ऋषी मुनी एंव साधु संन्यासियों की बड़ी विरासत मिली है। जिन्होंने समाज को हमेशा से नई दिशा दिखाने का कार्य किया है। वेदों और उपनिषदों का ज्ञान हमे इन्हीं ऋषी मुनियों एवं साधु संन्यासीयों से प्राप्त हुआ है। अरण्यक, पुराण, शास्त्र, विविध विषयों के बारे में हमें साधु एवं संन्यासीयों ने ज्ञान ही नही बल्कि नए स्थान और सिध्दांत भी दिये हैं। प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में ज्ञान निर्माण हेतु इन साधु और संन्यासी का योगदान बहुत प्रभावशाली रहा है। इन्होंने अपना पूरा जीवन समाज में बदलाव लाने के

लिए और परमात्मा की प्राप्ति हेतु व्यतीत किया है। आज के इस शोध पत्र में हम साधु किसे कहते हैं। उनके प्रकार और उनका उद्देश्य और स्वरुप किस प्रकार है? संत एकनाथ महाराज अपने एकनाथी भागवत में उनके बारे में क्या विचार रखते है, यह इस शोधनिबंध का प्रमुख विषय हैं। इस लेख के द्वारा मूलरूप से संत और साधु की व्याख्या और उनके अध्ययन का वर्णन और मूल्यांकन किया गया है। जो की निम्नलिखित आधारपर किया गया है:

- साधु और संन्यासी में जो फरक है, उसका अध्ययन करना।
- 'साधु' और 'संन्यासी' का स्वरुप क्या है? उनके विविध परम्परागत स्वरूपों का अध्ययन करना।
- संत एकनाथ महाराज के साधु और संन्यासी के प्रति विचारों का अध्ययन इस शोध निबंध का प्रमुख विवेचनात्मक विषय है।
- संत एकनाथ महाराज के संतो के प्रति विचार क्या हैं।
- साधु और संन्यासीयों का भारतीय संस्कृती में योगदान।

वर्तमान परिस्तिथि में साधु एवं संन्यासियों की वस्तुस्तिथि और जीवन लोगों के समक्ष आडम्बरपूर्ण और संशयग्रस्त हो गया है। नित नयी परिस्तिथियों में साधु व संन्यासियों पर आम लोगों का जन जीवन और उनका विश्वास भी प्रभावित हुआ है। जिस कारणवश साधुओं के प्रति श्रद्धा और सम्मान का अभाव भी आज के भारतीय समाज में कम होता जा रहा है। इन सभी व्यवहारगत परिवेश के बाद भी हमें यह देखने को मिलता है कि कुछ साधु व संन्यासी आदर्श ज्ञानियों की तरह समाज में ज्ञानमार्गी दिशा देने का प्रयास कर रहे हैं। ऐतिहासिक सन्दर्भ में जब साक्ष्यों को परखते हैं , तब भी हमें समाज और संन्यासियों के संबंधों के विषय में अनेक पहलु देखने को मिलते हैं। संभवतः साधुओं एवं संन्यासियों के प्रति संशयास्पद सामाजिक मनोवृत्ति मध्यकाल में भी रही थी। उदाहरणतः मध्यकाल के भारत के कई संन्यासियों को सामाजिक बहिष्कार का प्रकोप भी सहना पड़ा था। इन्हीं सामाजिक विषमताओं को देखते हुए , संत एकनाथ महाराज ने संन्यासियों के विषय को लेकर अपनी पुस्तकों में विस्तृत चर्चा भी की है। प्रस्तुत संशोधित निबंध में संन्यासियों और साधुओं के सामाजिक परिवेश में और भारतीय सामाजिक संरचना में उनके स्थान के विषय को लेकर विवरण और विवेचना का प्रयास किया गया है। साधु जीवन की विवेचना के इसी प्रयास के अंतर्गत विविध ग्रंथों और चिंतको के अध्ययन को उद्धृत किया गया है और जिसमें भारतीय परम्परा में साधुओं की भूमिका का विस्तृत वर्णन मिलता है।   इनमें से प्रमुख उल्लेख हमें गोविंद सदाशिव घुर्ये की पुस्तक 'इंडियन साधुस' में मिलता है, इस पुस्तक में उन्होंने संन्यास की दोहरी प्रकृति की समीक्षा की है। भारतीय संस्कृति के अनुसार ऐसा समझा जाता है कि साधुओं या संन्यासियों को सभी जाति-प्रतिमानों, सामाजिक परंपराओं आदि से मुक्त होना चाहिए। वस्तुतः एक साधु का जीवन सामाजिक दायरे से बाहर होता है। घुर्ये के विचारानुसार, 'संन्यास भूतकाल का अवशेष मात्र नहीं है, अपितु वह हिंदू धर्म का प्राणभूत पहलू है'।[१] देवेंद्र कुमार गुप्त अपनी पुस्तक 'सूत्र साहित्य' में वर्णीत भारतीय समाज एवं संस्कृति में संन्यासियों के बारे में कहते हैं कि, 'संन्यासियों को शुल्क भुगतान से मुक्त माना गया है', यु. एन. घोषाल के अनुसार, 'ऐसा प्रतीत होता हैं की विशिष्ट वर्ग में स्त्रीयो, शिशुओं, छात्रों और संन्यासियों का वर्ग न्युनाधिक रूप में समान है', किंतु ऋषि वाशिष्ठ की सूची में राजकीय भृत्यों का वर्ग अतिरिक्त है। वैदिक ग्रंथ 'आपस्तम्ब' के अनुसार, 'शूद्रों और कुछ अनिर्दिष्ट संप्रदायों को राजकीय भृत्यों में संमिलित किया गया है [२]

"नित्य संन्यासी जानो उसीको ; नहीं द्वेष आकांक्षा जिसको।"

गीताअमृत भावार्थ (१९७४ पृष्ठ: ३५८)

उपरोक्त दोहा, भागवद् गीता के एक भावार्थ टीका से लिया गया है , जिसमें साधु प्रवृत्ती के एक अंश का उल्लेख है।[३] साधु, संत और संन्यासियों की किस उचित शास्त्र में की गई व्याख्या को हम स्वीकार करें जिसमे में उनका स्वरूप पूर्ण रूप से वर्णीत हो, इस विषय को लेकर विविध व्याख्याऐं व चर्चा हैं। इन विभिन्न शास्त्रों और उनकी टीकाओं के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है, कि साधु एवं संन्यासियों की एक विशिष्ट व्याख्या उपलब्ध नहीं है , अपितू , प्रत्येक काल खंड में इन व्याख्याओं में परिवर्तन किये गये। तथा उनपर चर्चा व टीका भी की की गयी है। भारत के मध्य काल में साधुत्व को लेकर कई चर्चाएं और सामाजिक उद्वेग रहा , इतिहास के अध्ययन से भी ये परिलक्षित है कि मध्यकाल के संन्यासियों के जीवन के कई पक्ष सामाजिक संरचना में बदलाव लाने लगे। इसी परंपरा में संत एकनाथ महाराज ने अपने कार्यकाल में साधु संतो के वर्णन में कुछ परिवर्तनशील टीका की थी। उनकी इन्ही टीका का अध्ययन हमे बिसवीं सदी के कई अध्ययनों में मिलता है, जिनका उल्लेख उपरोक्त अनुच्छेदों में किया गया है।[४]

।

साधु एवं संन्यासियों की व्याख्याएं और उनके प्रायोगिक स्वरूप

शोध लेख के इस भाग में पारम्परिक भारतीय अध्यात्म में साधु एवं संन्यासियों पर वर्णिंत व्याख्यायों एवं उनके कार्यकारी जीवन के बारे में चर्चा की गयी है.

साधु : साधु का सामान्य अर्थ हैं, सज्जन व्यक्ति। लघुसिध्दांतकौमुदी (१८६७) में कहा गया है- ***'साध्नोति परकार्यमिती'*** अर्थात, साधु जिसका अर्थ है की जो दूसरों के कार्य या परोपकार के लिए साधना करे, वह साधु है। 'साधुती' या 'साधुवाद' अंतस्थित हैं, 'साधु' और 'साधुवाद' विरक्त नहीं होती हैं। साधु की कुछ व्याख्याये जैसे की भगवान को पाने निकले हुए साधक को ही साधु कहते हैं। जिसने अपने अंदर के छ: षडविकार को यानि की 'काम', 'क्रोध', 'मद', 'मोह', 'मत्सर' और 'लोभ' को धोया हैं। उसको साधु कहते हैं। साधु वो होता हैं। जिसने अपनी सब इच्छाओं को पूरा कर लिया हो अर्थात मृतक भाव में जीता हो और उसने अपने आप को जानकर अपनी सब इच्छाओं को धो (खाक कर दिया हो वही सत्य साधु हैं। वर्तमान समय में साधु उन्हें कहते है जो संन्यास की दीक्षा लेकर गेरुए बत्र धारण करते है। साधु का मूल उद्देश्य समाज का पथप्रदर्शन करते हुए धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्त करना हैं। साधु गण साधना, तपस्या करते हुए वेदोक्त ज्ञान को जगत को देते हैं। अपने जीवन को त्याग और वैराग्य से जीते हुए ईश्वर भक्ति में विलीन हो जाते हैं।[५]

साधु कैसे बने : मन से बाणी से, कर्म से किसी को भी दुखी न करें और भगवान को निष्कपट, निश्चल भाव से बिना किसी कामना के प्रेम करें सारे काम भगवान के लिए करे मन में सोचे कि भगवान में यह काम आपके लिए कर रहा हु, सबमें भगवान को देखे उनसे प्रेम भरे की मेरा भगवान बैठा हैं। उनके भीतर फिर चाहे कोई जंगल में रहे या घर पर वो साधु ही हैं। सदैव दुसरो का भला चाहे उनसे ईष्या न करें सबको सम्मान दे अपने लिए मान की इच्छा न करें हर परिस्थिती भगवान की इच्छा मानकर सुखी रहे। संतोष धारण करें। सहनशील और उदार

मन के स्वभाव का हों । कोई संन्यास दीक्षा अपने गुरु से लेकर साधु बनता है। और मानवीय मूल्यो एवं गुणों की वृध्दी के साथ समाज को मार्गदर्शन करने का कार्य करते रहते हैं।

साधु के प्रकार : साधु अनेकों प्रकार के होते हैं। उनके आचरणभाव से उनके प्रकार स्पष्ट होते हैं । अलग अलग साधु की अलग परंपरा रही हैं । जैसे की नागा साधु दिगंबर अवस्था मे रहते हैं । ये विषयवासना से परे होते हैं । ये जगत में बालक अवस्था में अपना जीवन भगवान को समर्पित करते है। कहते है, 'प्राचीन काल में मंदिरों और मठों की सुरक्षा के लिए नागा साधुओं को योद्धा की तरह तैयार किया जाता था'।६

नागा साधु : भारत के पुर्वोत्तर क्षेत्र में ही नागवंशी नागा जाति और दसनामी संप्रदाय के लोग रहते आए हैं। भारत का एक नाथ संप्रदाय भी दसनामी संप्रदाय से ही संबंध रखता हैं । पशुपतीनाथ मंदिर नेपाल में एक नागा साधु हिंदू धर्माबलम्बी साधु हैं । जो की नग्न अवस्था में रहता हैं । तथा युद्ध कला में माहिर होने के लिये प्रसिद्ध हैं । ये विभिन्न अखाडों में रहते हैं । जिनकी परंपरा आदिगुरु शंकराचार्य द्वारा की गयी थी। इनके आश्रम हरिद्वार और दुसरे तीर्थों   को दुरदराज इलाकों में हैं । जहाँ से आम जनजीवन से दुर कठोर अनुशासन में रहते हैं । शिव और अग्नि के ये भक्त इसी स्वरुप में रहते हैं । नागा साधु तीन प्रकार के योग करते हैं । जो उनके लिए ठंड से निपटने के लिए मददगार साबित होते हैं । वे अपने विचार और खानपान दोनों में ही संयम रखते हैं। नागा साधु एक सैन्य पंथ है और वे एक रेजीमेंट की तरह हैं । त्रिशुल, तलवार, शेख, और चिलम से वे अपने सैन्य दर्जे को दर्शाते हैं । ये साधु प्राय कुम्भ में दिखायी देते हैं । आकाश जिनका वस्त्र है कपड़ों के नाम पर पुरे शरीर पर धुनी की राख लपेटते ये साधु कुम्भ मेले में सिर्फ शाही खान के समय खुलकर श्रद्धालुओं के सामने आते हैं । अधिकत्तर संख्या नागा साधु पुरुष ही होते हैं । कुछ महिलायें भी नागा साध्वी हैं । पर वे सार्वजनिक रूप से नग्न नहीं रहती एक गेरुवा बख लपेटे रहती हैं ।७

शंकराचार्यने सनातन धर्म की स्थापना के लिए कई कदम उठाये जिनमें से एक था देश के चार कोनों पर चार पीठो का निर्माण किया वह यह थे गोवर्धन, शारदापीठ, द्वारिकापीठ, और ज्योर्तिमठ इसके अलावा आदिगुरु ने मठों मंदिरो की संम्पत्ती को लूटने वालों और श्रद्धालुओं को सताने वालो का मुकाबला करने के लिए सनातन धर्म के विभिन्न संप्रदायों की शाखाओं के रूप में अखाडो की स्थापना की शुरुवात की इतिहास में ऐसे कई गौरवपूर्ण युध्दो का वर्णन मिलता है। जिनमें 40 हजार से (जादा नागा योध्दाओं ने हिस्सा लिया अहमदशाह अब्दाली द्वारा मथुरा वृंदावन के बाद गोकुल पर आक्रमण के समय नागा साधुओं ने उसकी सेना का मुकाबला करके गोकुल की रक्षा की थी। भारत आजादी के बाद इन अखाडों ने अपना सैन्य चरित्र त्याग दिया। इनके प्रमुख 13 अखाड़े हैं । उनका संक्षिस में नाम निर्देशन इस प्रकार से हैं ।८

आखाडा साधु परंपरा और उसकी शाखाये

- **श्री निरंजन अवाडा गुजरात 826 ई.स्.:** इसकी शाखाये प्रयाराज, उज्जैन, हरिव्दार, त्र्यंबकेश्वर और उदयपुर में हैं । इनमें साधु महंत और महामंडलेश्वर होते हैं । इनके ईष्टदेव कार्तिक स्वामी होते हैं ।
- **श्री जुनादत्त अखाडा:** यह अवाडा 1145 में उत्तराखंड के कर्णप्रयाग में स्थापित हुआ इसे भैरव अखाडा भी कहते हैं। इनके इष्ट देव रुद्रावतार दत्तात्रेय हैं । इसका केंद्र वाराणसी के हनुमान घाट माना जाता हैं।
- **महानिर्वाण अखाड़ा:** 671 ईस्वी में स्थापित हुआ हैं । इनके इष्टदेव कपिल महामुनि हैं । इनकी शाखाएँ- इलाहाबाद, हरिव्दार, उज्जैन, त्र्यंबकेश्वर, ओमकारेश्वर और कनखल में है।साधु महाकाल को दही, भस्म चढाते हैं ।

- **अटल आखाडा:** 569 ईस्वी गोंडवाना क्षेत्र में स्थापित किया गया। गणेश भगवान इनके ईष्टदेव हैं ।
- **श्री आव्हान अखाडा:** यह 646 में स्थापित और 1603 में पुर्नसंयोजित किया गया इन के इष्टदेव श्रीदत्तात्रेय और गणेश हैं ।
- **आनंद अखाडा:** 855 ईस्वी में मध्यप्रदेश के बेरार में स्थापित हुआ था इनका केंद्र वाराणसी हैं ।
- **पंचाग्नि अखाडा:** 1136 में स्थापना हुई थी। इनके ईष्टदेव गायत्री है। केंद्र काशी हैं ।
- **श्रीनागपंथी गोरखनाथ अखाडा:** 800 ईस्वी में अहिल्या गोदावरी संगम पर स्थापित हुआ इनके संस्थापक पीर शीवनाथजी हैं । इसमें बारह पंथ हैं। यह योगिनी कौल नाम से प्रसिध्द हैं । इनकी व्यवकेश्वर शाखा प्रसिध्द हैं ।
- **वैष्णव आखाडा:** यह बालानंद आखाडा ईस्वी 1595 में दारागंज में भी मध्यमुरारी में स्थापित हुआ समय के साथ इनमें तीन निर्मोही, निर्वाणी, खाकी आदि संप्रदाय बने केंद्र त्र्यंबकेश्वर, मारुती मंदिर के पास हैं ।
- **श्रीउदासीन पंचायती बडा अखाडा:** 1910 में स्थापित हुआ था। इनके संस्थापक श्रीचंद्र आचार्य उदासीन हैं।
- **श्री उदासीन नया अखाडा:** 1710 में स्थापित हुआ हैं । हरिव्दार में केंद्र एवं जन्म विभक्त होकर स्थापित हुआ हैं ।
- **श्री निर्मल पंचायती अखाडा:** 1784 में स्थापित हुआ। इनका केंद्र एवं जन्म हरिव्दार में हैं ।
- **निमोही अखाडा:** निर्मोही अखाडे की स्थापना 1720 में रामानंदाचार्य ने की थी. इस अखाड़े के मठ और मंदिर उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, और बिहार में हैं । केंद्र हिमालय में कहाँ जाता हैं ।

अघोरी साधु : अघोरी साधु जमात में नहीं रहते हैं । और अपनी साधना अकेले में ही करते हैं। नग्न तो नहीं ही रहते हैं । यह तंत्र मंत्र साधना में विश्वास रखते हैं । ऋधी सिध्दी प्राप्त कर शिवजी की भक्ति करते हैं ।९

संन्यासी : जो भगवान के पास निरंतर बैठा रहता है, वह संन्यासी है । प्राचीन काल में व्यवस्था के दो स्तंभ थे, पुरुषार्थ और आश्रम I व्यतिगत संस्कार के लिए उनके जीवन का विभाजन चार आश्रम में किया गया था। ये चार आश्रम थे, प्रथम: ब्रम्हचर्य, द्वितीय: गृहस्थ, तृतीय: वानप्रस्थ और चतुर्थ: संन्यास आश्रम। संन्यासी का उदेश्य मोक्ष की प्राप्ती है। संन्यास का अर्थ संसारिक बंधनों से मुक्त होकर निष्काम भाव से प्रभु निरंतर स्मरण करते रहना। शाखो में संन्यास को जीवन की सर्वोच्च अवस्था कहा गया हैं । जिस तरह ब्रम्हचर्य में गृहस्थ में वानप्रस्थ की तैयारी होती है । उसी तरह वानप्रस्थ में संन्यास की तैयारी होती हैं । तब बन के आश्रम का भी त्याग हो जाता हैं । ऐसी अवस्था को ही परिव्राजक कहाँ गया है। परिव्राजक विचरण करता है। उसे ही ब्रम्हनिष्ठ कहा गया है । यही मोक्ष है । संन्यास आश्रम ब्रम्हचर्य आश्रम की पुनरावृत्ती है। प्राचीन काल में ऋषी मुनी बन में जुटी बनाकर रहते थे । वहाँ ध्यान और तपस्या करते थे। उक्त जगह पर समाज के लोग अपने बालकों को वेदों का अध्ययन करने के अलावा विद्यायें सीखने के लिए भेजते थे। धीरे धीरे यह आश्रम संन्यासीयों, त्यागियों, बिरक्तो धार्मिक यात्रियों और अन्य लोगों के लिए शरण स्थली बनता गया। सनातन धर्म में संख्यास को बहुत महत्त्व दिया हैं । संन्यासी को साधु, ऋषी, मुनि, महात्मा, स्वामी, या परिवाजक कहा गया है । संन्यासीयों के भी कई भेद बताये गए हैं । लेकीन पुराणकारों के अनुसार संन्यास आश्रम के दो भेद हैं : १.संन्यास आश्रम में रहनेवाले व्यक्ति को **पारमेष्ठिक** या योगी कहा जाता है। योगाभ्यास द्वारा अपनी इंद्रियों और मन को जीतने वाला तथा मोक्ष की कामना रखनेवाला व्यक्ति पारमेष्ठिक संन्यासी कहलाता है । २. लेकिन व्यक्ति ब्रम्ह का साक्षात्कार कर अपनी आत्मा में ही परमात्मा के दिव्य

स्वरूप का दर्शन करता है। तो उसे **योगी संन्यासी** कहा जाता है। वैष्णव, शैव, शाक्त, दसनामी और नाथ संप्रदाय में साधुओं के अलग अलग भेद हैं। लेकिन कहलाते सभी संन्यासी ही हैं। संन्यासी होने के लिए संन्यासी मात्र का होना जरुरी है। तभी संन्यास आश्रम मोक्षदायी सिध्द होता हैं। संन्यास की श्रेष्ठ अवस्था है। परमहंस हो जाना है। १०

II

साधु एवं संन्यासियों पर श्री संत एकनाथ महाराज के विचार

लेख के प्रथम भाग में हमने चर्चा की, कि किस तरह, संत एकनाथ महाराज ने उनके कालखंड में कई स्थापित परिभाषाओं को परिष्कृत कर उनमें सुधार किए। इसी विषय को आगे अग्रसर करते हुए निम्नलिखित वर्णन में अधिक विस्तार से चर्चा की गई है। मध्यकालीन महाराष्ट्र में एक महत्वपूर्ण संत श्री एकनाथ महाराज इनका जन्म और कर्म स्थान पैठण रहा हैं। उन्होने वारकरी संप्रदाय को विस्तृत एवं विकसित में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। वे ब्राह्मण परिवार से होकर भी ब्राह्मण समाज की बुराइयों पर कभी परदा नहीं डालते थे। संत श्री एकनाथ महाराज शास्त्र , पुराण , और वेदो की जानकारी रखते थे। संत एकनाथ के साधु और संन्यासियों के बारे में जो विचार उनके ग्रंथ **'एकनाथी भागवत'** में आये हैं, उसी एकनाथी भगवत के आधार पर निम्नलिखित वर्णन उद्धृत है। पहले हम साधु के बारे में विचार विमर्श करेगें।

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमान् जितषड्गुण ;। आमनी मानद ; कलपो मैत्र ; कारूणिक ; कवि ; (संस्कृत श्लोक : भगवत पुराण) ३१

अतिनाटकी नाटक मन। मुक्तत्वें धरी अभिमान। त्यांचे करावया निर्दळण। साधु सावधान निजबोधे।।

{प्राकृत ओवी: एकनाथी भागवत} ८७

भावार्थ: सामान्य मनुष्य जो निज अभिमान और अस्थरिता से व्यथित है, साधुजन उस मनुष्य को उचित राह दिखाते हैं

साधु : साधु जिनको कहा जाता है कि 'साधुजन मनुष्य को उचित राह दिखाते हैं', उनके स्वरूप लक्षण के बारे में संत एकनाथ महाराज अपने भागवतपुराण के ग्यारहवें स्कंध पर टीका में अध्याय ग्यारह में अपने साधु विषयक या साधु के बारे में विचार रखते हैं। वह इस प्रकार से आते हैं, 'की साधु की पहचान कैसे किया जाये? वे बताते हैं कि साधु के लक्षण और स्वरूप इस प्रकार से होते हैं ; जिसमें कठोरता नहीं होती हैं ,निठुरता नहीं होती है , किसीका बुरा करने की भावना उनमें कभी नहीं होती हैं। उनका हृदय में दया सदा ही रहती हैं। उनमें किसी प्रकार का द्वेष नहीं रहता है। किसी भी प्राणी से वे बैर नहीं रखते हैं। वे सदा ही क्षमाशील रहते हैं। उनका आचरण हमेशा सत्य के साथ रहता हैं। उनका चित्त आत्मज्ञान से पवित्र हुआ रहता हैं। उनको किसीसे जलन नहीं रहती हैं। सुख हो या दुख अपने मन की शांती को वे कभी भंग नहीं होने देते हैं। साधु सर्वदा संघर्ष से विरहित रहते हैं। वह समान दृष्टी रखते हैं। उनमें परोपकार की भावना वृक्ष के समान होती हैं। अंतःत वह आत्मानंद में पूर्णरूप से समाधानी रहते हैं। इसी वजह से वह निरिच्छ होते हैं। इंद्रिय नियमन एक साधु का लक्षण है। उनका अंतकरण कोमल होता है।

मुक्ताभिमाने विषयासक्ती । हेचि मानक्षोभाची प्राप्ती । वृत्ती असोनिया मुक्ती। साधु न मानती सर्वथा ।।

{प्राकृत ओवी: एकनाथी भागवत} ८६

भावार्थ: अभिमान रहित और विषयासक्ति से जो व्यक्ति दूर रहतें हैं उन्हें साधु कहतें हैं ।

उनमें निरपेक्षता होने की वजह से उनको किसी भी विषय की कोई अभिलाषा नही रहती है । व्रत तप, दान, तीर्थयात्रा इस में भी उनकी कोई आसक्ती नहीं रहती है। किंतु उनपर साधुत्व की कृपा रहती हैं । वह अपने कर्म आवश्यकता अनुसार अनासक्त भाव से सदाचार पूर्वक करते हैं । संग्रह करने की उनकी वृत्ती नहीं होती हैं । उनमें अहंकार और ममता नहीं होती हैं । फल के लालच से वह अपने कर्म नहीं करते हैं। शरीर संभालने हेतु जितना लगता उतना ही लेते हैं । वह अन्न को महत्व देते हैं । वह भूख के अधीन नहीं रहते अपनी जिव्हा को स्वाद के अधीन नहीं होने देते हैं। जो अन्न प्राप्त हुआ हैं । उसीको सात्विकता को संभालते हुए ग्रहण करते हैं । साधु का अंतकरण किसी भी हालत में गिरने नहीं देते हैं । स्थिरता पाने की खुद के वर्णधर्म का आश्रमधर्म का पालन पूरी निष्ठा के साथ करते हैं । अर्थात साधु का आचरण स्वधर्माचरण में स्थैर्य यही साधु का लक्षण हैं । साधु हमेशा प्रभु तरण में सदा रहते हैं । गुरु का उपदेश और वेदो का श्रवण इसका हमेशा विचार करते रहते हैं । और प्रभु के स्वरूप का चिंतन एवं मनन करते रहते हैं । जब तक मन उसका पुरी तरह हो न जाता तब तक साधु अपनी साधना में लगे रहते हैं । मन आत्मज्ञान से सतत दमन करते रहना ये भी साधु का लक्षण हैं । समंदर जिस प्रकार बढ़ता नहीं और घटता नहीं हैं । उसी प्रकार साधु अपनी गंभीरता सदा ही रखता हैं । श्रीमंत और गरीबी आई तो भी अपनी गंभीरता को छोड़ते नहीं हैं । साधु अपना मन प्राण व इंद्रिय इनको बड़े धैर्य के साथ बांधकर रखता हैं । जो अपनी इन्द्रियों को जीतता है उसे ही जितेन्द्रिय साधु कहा जाता है । मुख प्यास, क्रोध, मोह, और बुढापा, मृत्यू इस प्रकार के शरीर की अवस्था साधु जीतता हैं । मान सम्मान की अपेक्षा साधु को नहीं रहती हैं । सब से वह नम्रता पूर्ण व्यवहार करते हैं । साधु सब को बराबर का मानसन्मान देते हैं । अब वो मनुष्य स्थान संपादन करने के बाद योग्य विद्यार्थी को ज्ञान नहीं देता उसको कृपण समझना चाहिए। और ज्ञानी मनुष्य उसका ज्ञान दूसरों को देता हैं । मगर कठिन भाषा शब्द का प्रयोग करता हैं । वह शिष्य को समझ नहीं आता उसके ज्ञान का दुसरो को कोई उपयोग नही होता हैं । कुछ ज्ञानी लोग धनिक शिष्य को अपना ज्ञान बेचते हैं । यह एक अपप्रवृत्ती हैं । किंतु साधु आत्मज्ञान संपन्न, नम्र निरपेक्ष, रहता हैं । और शिष्य को जिस भाषा में समझना आसान होगा उसका मन आकृष्ट होगा इस प्रकार मे उपदेश देने में समर्थ रहते हैं ।११

शिष्य की किस प्रकार की समझ शक्ति हैं । उस प्रकार सरल भाषा में और निस्वार्थ भावसे और अंतकरण से ज्ञान देते हैं । इसको गरबोधकता कहते हैं । साधु का अंतकरण सभी प्राणीमात्र से एक हुआ होता हैं ।

साधुची मैत्री चोखट। वोळखी सर्वांशी जुनाट । सर्वांचा सखा श्रेष्ठ । सर्वांशी सकट सारखा,

{प्राकृत ओवी: एकनाथी भागवत} श्लोक ३१   अध्याय अकरावा, ओवी १०३५

भावार्थ: इसी वजह से वह सबसे मैत्रीपूर्णभाव, देहभाव और सौजन्य किसी को न फंसाते हुए उनके मन में दुसरो का दुःख दूर करके उनको सूखी कैसे बनाया जाएँ यही व्यापक विचार उनके मन में हमेशा रहता है । वह परोपकार की एक भी मौका नहीं गंवाना चाहते अनन्यभाव से निष्कपट आचरण इसको मैत्री कहते हैं । ऐसी मैत्री होना यह साधु का लक्षण हैं । कारुण्य यह भी साधु का लक्षण हैं । परतावा की इच्छा न करते हुए अपना दयालुभाव का अभिमान न रखते हुए दुखीजन का दुःख निवारण करना यह साधु का सहज लक्षण हैं । यह अठ्ठाइस लक्षण साधु की एकनाथ महाराज अपने एकनाथी भागवत में बताते हैं । उपनिषद में ब्रम्हज्ञान की अनुभुती होने की वजह से

उनका बोलना यह खाली पांडित्य नहीं रहता उनकी बात अनुभव में से आई रहती हैं । इस प्रकार साधु समाज को राह दिखाने और उनमें बदलाव लाने का काम साधु करते रहते हैं।१२

संन्यासी : निस्सीम वैराग्य जिसके अंदर उत्पन्न हुआ हैं । जिसे विषय की वार्ता भी अछी नसही लागती, ज्ञानप्राप्ती के लिये जो उद्यत रहता हैं । ,ऐसे अत्यंत विरक्त को संन्यासी कहते हैं । वह ज्ञाननिष्टा से अत्यंत संपन्न रहता हैं । उसका मन आत्मस्वरूप मे लीन रहता हैं । उसका आत्मस्वरूप का अनुसंधान कभी नही तुटता हैं । और उसको इंद्रलोक, चंद्रलोग, सत्यलोग में कोई रुची नहीं रही हो उसने विधीयुक्त विहिताग्नि का विसर्जन करके और सर्वस्व का त्याग जो कर सकता हैं । और संसार से विरक्त होकर प्रभुकार्य और उसके पास बैठा रहता हैं । वह संन्यासी हैं । ऐसी व्याख्या एकनाथ महाराज अपने 'एकनाथी भागवत' में अठारहवा अध्याय में करते हैं।१३

संन्यास ग्रहण की विधी : विप्रस्य वै संन्यसतो, देवा दारादिरूपीण; । विघ्नान्कुर्वन्त्ययं ह्यस्मानाकम्य समियात्परम. (संस्कृत श्लोक : भगवत पुराण) अठारवां अध्याय श्लोक १४.

संन्यास करिता जो ब्राह्मण । त्यासी समस्त देव मिळोन । नाना स्त्रीयांदि रुपें जाण । अनंत विघ्ने करूं येती ।
{प्राकृत ओवी: एकनाथी भागवत} ७०

संन्यास लेने से पहले आठ शाखाओ का अध्ययन करने के उपरांत प्रजापत्य और विष्णुयाग करना और अपनी संपत्ती घरवालों को दान करना सारी बाधाएँ छोड़ कर पूर्ण निरपेक्ष होकर अधिकारी महात्माओं से संन्यास दीक्षा लेनी चाहिए जब मनुष्य संन्यास लेने के लिए तैयार होता हैं । तब देवता उसके मार्ग में बाधाएँ लाते हैं। अब हमको हविर्भाव मिलेगा नही इस लिए देव, दारा, पुत्रादि के रूप से मोह में डालने की कोशीश करते हैं । सब देवताओं की उपेक्षा करके निशंक संन्यास लेना चाहिए। संन्यासी ने गुरु शरण में जाना चाहिए। गुरूवाक्य सुनने के बाद ब्रम्हस्वरूप हो जाते हैं । फिर वह पूर्ण विधि निषेध के पार जाते हैं ।

संन्यास आश्रम : आवश्यकता अनुसार लंगोट या छोटा कपडा इस्तेमाल होता हैं । संन्यासी को कोई रोग लग जाता हैं । या फिर उसपर संकट जाता हैं । तब लोगों ने उसकी सहायता करनी चाहिए। संन्यासीने सावकाश निचे देखकर चलना चाहिए कही पैरोतने जीवजंतु मर ना जाए। पाणी बख से छानकर पीना चाहिए। हमेशा मीठा और सत्य बोलना खुद को भगवान नारायण से एकरुप समज कर विश्व में ऐक्यभाव में घुमना चाहिए उनके तीन दंड होते है वाग्दंड, देहदंड और मनोदंड.१४

मौनानीहायामा , दण्डा वाग्देहचेतसाम । न ह्येते यस्य संन्त्यग्ङ्, वेणुभिर्न भवेद्यति :
(संस्कृत श्लोक : भगवत पुराण) अ . १८ वा श्लोक १७ वा
देह वाचा आणि मन । या त्रिदंडाचे लक्षण । तुज म्या संगितलें संपूर्ण । संन्यासत्व जाण येणे सत्व ।
{प्राकृत ओवी: एकनाथी भागवत} १०२

मन, वाणी, प्राण इनके प्रवाह में अहंकार ने उत्पन्न किये हुये तथा अन्य संसार आत्मा की मिथ्या और मायावी हैं। ऐसा ही भास होता हैं । चिन्मात्र ब्रम्हसवरूप मे संसार का भास होता हैं । **वाग्दंड** याने की मौन धारण करना, सत्य भाषण और नामजप करना यह **वाग्दंड** हैं । मन शरीर की सब हलचल नियमबद करना यह **देहदंड** हैं । और अपने बंचल मन को निरंतर सावधानी पूर्वक तरीके से ब्रम्हअनुसंधान में रख रखना यह **मनोदंड** हैं । **त्रिदंडी** संन्यास इसी को कहते हैं । यह त्रिदंड छोड़कर खाली दंड लेकर घूमना यह संन्यास नहीं हैं । वह संन्यानधर्म की विटंबना हैं । संन्यासीने भिक्षा कहाँ मांगनी हैं। ब्रम्हवृत्तीसे रहनेवाले ब्राम्हण के पर से भिक्षा लेनी चाहिए। भिक्षा मर्यादित लेने की हम भिक्षा को जा रहे हैं । ऐसा बोलना नही भिक्षा सात घर मे लेने की जो मिलेगा संतृष्टी

माननी हैं। भिक्षा लेने के बाद संन्यासीने गाँव के बाहर नदी के किनारे जाने के उपरांत प्राप्त भिक्षा हात में रखकर आचमन करने का वाराह प्रणव से अभिमंत्रित करने की इससे वह पवित्र हो जाती हैं। फिर उसके चार भाग करने के ब्रम्हदेव, सुर्य व विष्णु भुत इन चारों को अर्पण करने का विष्णु का अन्नभाग पाणी में डालने का भुत का भाग जमीन पर रखने का और बाकी दो भाग करने का यदी खाने के समय कोई प्राणी आया तो भूतदया भाव से उसको भी खाने को देने का देते वक्त दातृत्व का अभिमान नहीं आना चाहिए उससे संन्यासी को अधर्म का दोष लगता हैं। संन्यासीने जादा भिक्षा नहीं मागणी चाहिए और अन वचना नही चाहिए यह ध्यान रहे की जादा भिक्षा खाने से निद्रा आलस्य अनेक विकार उत्पन्न होते हैं। इस लिए संन्यास धर्म में अल्प आहार लेना चाहिए। संन्यासी के हमेशा निर्जन और निर्भय स्थान पर रहकर आत्मस्वरूप का चिंतन करना चाहिए उन्हे सब तरह समदृष्टी रखकर तीर्थयात्रा करनी चाहिए मार्ग में भिक्षा मांगने के लिए कम संख्यावाले गाँव वाडा पाणी जहाँ पानी उपलब्ध हो। वहाँ ठहरना चाहिए विरक्ती से जीवन जीना चाहिए।

यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक् प्राणसंहतम। सर्व मायेती तर्केण, स्वस्यस्त्यकत्वा न तत्स्मरेत

(संस्कृत श्लोक : भगवत पुराण) अ . १८ वा श्लोक २७

संन्यास चतुर्विध देख। हंस ,परमहंस एक। एक तो बहूदक। कुटिचक तो भिन्न।

{प्राकृत ओवी: एकनाथी भागवत} १७६ ओवि

भावार्थ : कुटीचक, जो कर्म का त्याग कर जो संन्यासी बना लेकीन मन मे न ध्यान हैं। , न ज्ञान हैं । और अन्न के लीये अपने गांव में रहता हैं। उसे कुटिचक कहते हैं । कुटिचक में संन्यासी वार्धक्य में अग्निहोत्र और स्त्री का त्याग करता हैं । किंतु शिखसूत्र नहीं त्यागता इस लीये उसे गायत्री मंत्र का अधिकार रहता हैं। नित्य पुत्र के घर भीक्षा लेता हैं।, उसके घर में पर्णकुटी बंधाता हैं। और मठ छोडकर दूर कहीं नहिं जाता इस लिये उसका नाम कुटिचक हैं। बदक, शिखसूत्र का त्याग कर, त्रिदंडी ग्रहण करता हैं। , लेकिन ज्ञान बिलकुल नहीं होता। न निस्सीम वैराग्य रहता हैं ; ज्ञान पर निष्ठा भी अच्छी नहीं रहती लेकिन सब अत्यंत कर्मठ रहता हैं। वही **बहुदक** में श्रेष्ठ माना जाता हैं। हंस वैराग्य के निश्चय से ज्ञानसाधना का विचार करने वाला, शिखा सूत्र तथा कर्मकात्या कर आत्मचिंतन पर ही जिसकी श्रद्धा रहती हैं। उसे विविदश संन्यास कहते हैं। और जो इस दृढनिष्ठा से आचरण करता हैं । उसे **हंस** कहते है और परमहंस वह ज्ञाननिष्ठा से परिपूर्ण रहता हैं। इसलिये उसके द्वार पर शांती भी सेवा करती हैं । वह तीन गुणों को मिथ्या मानते हैं। कर्म की बात वह मिथ्याही मानते हैं। और वह स्वयं निष्कर्म ही हैं । यह वह जानते हैं । उसी प्रकार कर्म क्रिया और कर्तव्य ता यह प्रारब्ध के अनुसार प्रकृती पर ही निर्भर हैं । ऐसी स्थिती मे जो समाधान मे रहता हैं । उसे **परमहंस** कहते हैं । उसे मठ की आवश्यकता नही होती है। वह अनित्य उदास तथा निराश्रय मे रहते हैं । इस तरह संत एकनाथ द्वारा कर्म और वृत्ती के अनुसार संन्यासियों को चार क्रमो में विभाजित किया गया है।१५

III

निष्कर्ष : भारतीय संस्कृती में साधु संन्यासीयों ने अपना अहम योगदान दिया हैं। यह साधु और संन्यासी की परंपरा प्राचीन ऋग्वेदकाल से चली आ रही हैं। प्रत्येक संन्यासी महात्माओं ने सत्य की खोज की हैं। उनमें आदिनाथ ने संन्यास लेकर भारत को जैन आचार्य की परंपरा दी हैं। ऋषी, मुनी, साधु, संन्यासीयों ने वेदशास्त्र पुराण और उपनिषद की परंपराएँ भारत को दी हैं। वैसे ही गौतम बुध्दने संन्यास ग्रहण करके एक नये बौद्ध धर्म की नींव रखी हैं। उसी प्रकार साधु संन्यासीयों ने अनेक प्रकार के विषयों की खोज करके समाज को समृध्द किया हैं। वेदो का पुर्नरुजीवन गौडपादस्वामी, कुमारिलभट्ट और गुरु शंकराचार्य, हस्तामलक इन्होने संन्यास लेकर

भारत में वैदीक धर्म को नई दिशा दी हैं। और अपने संन्यस्त जीवन में भारत में मह परंपरा मंदिर और शास्त्रार्थ परंपरा का योगदान इन्हीं संन्यासीयों ने भारत को दिया और नये सिंद्धात नियम वेद अध्ययन करके समाज में बहुत बड़ा परिवर्तन इन्होंने लाया है।

इस शोध पत्र से हमे यह समझ में आता हैं कि साधु और संन्यासी इनमें बहुत बड़ा विभेद है। और इनकी साधना करने की विधी भी अलग हैं। हमें यह पता चलता है की साधु अनेक प्रकार के होते हैं। उनकी अपनी खुद की एक गुरु परंपरा हैं। कुछ साधु ने ही साधना का मार्ग धारण किया हैं। खास करके अघोरी साधु संन्यासी के भी प्रकार होते हैं। कुछ संन्यासी अपनी साधना मोक्ष पाने के लिए करते हैं, तथा अपना सर्वस्व साधना में लगा देते हैं, और भगवान के नाम जप करते रहते हैं। किंतु कुछ संन्यासी समाज में अपना ज्ञान का प्रसार प्रचार करने और समाज में बदलाव लाने के लिए कार्य करते हैं। आद्य-शंकराचार्य समाज में संलग्रित साधु जीवन के उत्तम उदहारण हैं। और इसी शोधपत्र में हमने नागा साधु की सूक्ष्म स्वरूप में चर्चा कि हैं। इस शोधपत्र में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध महान शांतीब्रम्ह श्री संत एकनाथ महाराज के एकनाथी भागवत ग्रंथ में जो साधु और संन्यासी के बारे में जो विचार आये हैं।

संदर्भ ग्रंथ

१. Ghurye G.S, 1953, **INDIAN SADHUS'** The popular book depot, lamington Road Bombay page. 159.

२. गुप्त देवेंद्र कुमार, २०१०, **सूत्र साहित्य में वर्णित भारतीय समाज एवं संस्कृति**, प्रतिभा प्रकाशन इंडियन युनिव्हर्सिटी दिल्ली पृ २७ ,३४ , ५३८ .

३. जोशी , (१९७४), **गीताअमृत आर्थत श्रीमद्भगवद् गीता का हिन्दी पद्यानुवाद: मूल श्लोक पद्यानुवाद भावार्थ, टिका व्याख्या,व शब्दार्थ सहित,** द यूनिवर्सिटी ऑफ कॅलिफोर्निया पृ. ३५८.

४. शर्मा मख्खनलाल, (२००३) **गीता – स्वाध्याय**, हितकारी प्रकाशन दिल्ली, पृ. ५८ ,५९ ,६० ,६६, ७५, ७६.

५. वर्मा श्रीमलिया बिहारीलाल (२००६), **विश्व धर्म दर्शन,** बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना पृ. २६६ ,२७० ,२६४ , २६६.

६. उग्रु लोकविद्यापीठ ,खंड ६ , **ऋषि एवं संत परंपरा भाग १** , नई दिल्ली, पृ. २७७ ,२७८ .

७. मैनी धर्मपाल, (१९७२), **मध्ययुगीन निर्गुण चेतना,** लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृ. ५४.

८. नागोरी एम.एल. (२००३), **प्राचीन भारत का सम्पूर्ण इतिहास**, सबलाइम पब्लिकेशन, जयपूर भारत पृ.३८ ,१७९ .

९. सहस्त्रबुध्दे पुरूषोत्तम गणेश (२०११), **महाराष्ट्र संस्कृती,** कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, विजयानगर, पुणे पृ. १७२, १७३.

१०. दीक्षित स. का. (१९६०) **प्राचीन भारतीय संस्कृती**, दा ना मोधे प्रकाशन कोल्हापुर पृ.२५४, २५५.

११. घैसास दिवाकर अनंत (२०२०) **श्री एकनाथी भागवत कथासार**, धार्मिक प्रकाशन संस्था, मुंबई पृ. ११३, ११४,११५.

१२. कामत रामचंद्र कृष्ण, (२०१५) मार्च, **एकनाथी भागवत**, केशव भिकाजी ढवळे प्रकाशन, गिरगाव मुंबई पृ. ७२९ ,७३०, ७३१.

१३. गोसावी गणपतबुवा भानुदासबुवा (नाधवले) (१९८४), **श्रीएकनाथी भागवताचा प्रसाद**
श्री एकनाथी ग्रंथसार प्रकाशन, पैठण, औरंगाबाद, पृ. २५० ,२५५.

१४. पांगारकर लक्ष्मण रामचंद्र, (१९३२) **मराठी वाङ्मयाचा इतिहास खंड पहिला**,
संपादक मुमुक्षु नाशिक पृ क्र २७६,२७९.

१५. सप्रे न. वि , अनुवादक (२००५) , **श्रीमद् एकनाथी भागवत**, विश्वविद्यालय प्रकाशन , वाराणसी पृ. ४८४,४८५ ,३०७, ३०१.